

10. यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम 'निष्ठां' प्रभवं च नित्यम्।  
तन्नामतो न्यद् व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत् क्रिययानुमेयम्॥

श्रीमद्भागवत 5/12/8

(हम देखते हैं कि संपूर्ण चराचर भूत सर्वदा पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं और पृथ्वी में ही लीन होते हैं, अतः उनके क्रियाभेद के कारण जो अलग-अलग पड़ गये हैं-बताओ तो उनके सिवा व्यवहार का और क्या मूल है?)

रहूगणसंवादान्तर्गत उद्ग श्लोक में पठित 'निष्ठा' शब्द निश्चित अर्थ का ही बोधाक बना हुआ है, जैसा कि इसके इस शब्द से स्पष्ट है कि- हजबकि हम इस प्रकार से निश्चितरूप से जानते हैं कि-सम्पूर्ण स्थावर जमिं भूत-भौतिक भावों की उत्पत्ति और लय का एकमात्र आधार पार्थिव विवर्त ही है, तो उन भूत-भौतिकों की क्रिया से नाम के अतिरिद्ध और किस व्यावहारिक मूल का अनुमान किया जायाह

11. रक्षिता स्वस्य धर्मस्य, स्वजनस्य च रक्षिता।

वेदवेदातिंत्वज्ञो, धानुर्वेदे च निष्ठितः॥

श्रीवाल्मीकिरामायण

1/1/14

बालकाण्ड के आरम्भ में ही महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् राम का जो स्वरूपवर्णन किया है उसी प्रसर्ग का उद्ग श्लोक है जिसका अर्थ स्पष्ट है कि- भगवान् राम अपने आर्ष वैदिक वर्णाश्रमधर्म के संरक्षक है, धर्म पूर्वक ही अपने आश्रित स्वजनों के संरक्षक हैं। वेदवेदातिंत्वों के परिज्ञाता हैं एवं अपने क्षत्रिय वर्ण के उचित उपवेदात्मक धानुर्वेद में श्रीराम सर्वथा परिनिष्ठित ही हैं। अन्यत्र सामान्य आसद्रि, किन्तु स्वधार्मात्मक धानुर्वेदरूप क्षात्र धर्म में दृढ-निश्चित-आस्था, यही 'निष्ठितः' का प्रासर्गिक स्पष्टीकरण है। 'तस्मिन्निष्ठितः सम्यक् तज्ज्ञाता' ऋ वाल्मीकिरामायण तिलकटीकाऋ 'धानुर्वेदे-शस्त्रस्त्रतिपादके शास्त्रे निष्ठितः-परमज्ञातेत्यर्थः' ऋ वाल्मीकिरामायण शिरोमणिकाऋ तेषु निष्ठितः-निष्ठावान् ऋ वाल्मीकिरामायण भूषणटीकाऋ इत्यादि रूप से टीकाकारों के द्वारा भी निष्ठा का यही तत्त्वार्थ समन्वित हुआ है।

12. निष्ठया हि प्रतिष्ठा स्यात्-अनिष्ठस्य कुतः कुलम्।

शक्नोति नैष्ठिकः स्वीयं धर्मं त्रतुं न चेतः॥ वैद्यकुलतत्त्वे भरतमल्लिकः

हनिश्चित निर्भ्रान्त स्थिर बु)कौशलस्वरूप 'निष्ठा' से ही मानव स्वस्वरूप से प्रतिष्ठित होता है। जो इस प्रतिष्ठा स्वरूप से वटित है उसका स्वयं का तो उच्छेद होता ही है, साथ ही

उसका वंश भी मर्यादा रहित बनता हुआ उच्छिन्न हो जाता है। नैष्ठिक मानव ही निष्ठा के बल पर स्वधर्मरूप स्वकर्तव्य कर्म के संरक्षण-पालन में समर्थ बन सकता है निष्ठाशून्य द्धभावुकऋ मानव कभी स्वकर्तव्य का संरक्षण नहीं कर सकता।ह स्पष्ट ही 'निष्ठा' शब्द उद्ग श्लोकमाधयम से अपने निश्चित 'भाव का समर्थन कर रहा है।'

### 13. देवद्विषां निगमवर्त्मनि 'निष्ठितानां' पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः।

लोकान् घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधार्म्यम्॥

श्रीमद्भागवत 2/7/37

(देवताओं के शत्रु दैत्यलोग भी वेदमार्ग का सहारा लेकर मयदानव के बनाये हुए अदृश्य वेगवाले नगरों में रहकर लोगों का सत्यानाश करने लगेंगे, तब भगवान् लोगों की बुद्धि में मोह और अत्यन्त लोभ उत्पन्न करने वाला वेष धारण करके बुद्ध के रूप में बहुत से उपधर्मों का उपदेश करेंगे।)

हजबकि देवरोही दानवगण निगम द्धवेदऋ मार्ग में सुनिष्ठित बने रहते हुए मय दानव के द्वारा सुनिर्मित अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली लोह-रजत-सुवर्णमयी तीन पुरियों में विचरण करते हुए जो कि पुरत्री सर्वसाधारण की दृष्टि में अलक्षित रहती है-धार्मिक प्रजा को नष्ट करने लगेंगे, तो उस दशा में भगवान् उन दानवों की बु)निष्ठा को विचलित करने के लिए उसे मोहमयी बनाने के लिए बु)वेष धारण कर कितने ही उपधर्मों का उपदेश करेंगे।ह 'निगमवर्त्मनि निष्ठितानाम्' वाक्य निष्ठा के निश्चित आस्थाभाव का ही समर्थक बना हुआ है। इस प्रकार इन निगम और आगम वचनों में प्रयुद्ध 'निष्ठा' शब्द सर्वथा सर्वात्मना यही प्रमाणित कर रहा है कि- 'बु) का निश्चित अध्यवसायात्मक स्थिर धर्म ही- नितरां स्थितिर्लक्षण निर्वचन से 'निष्ठा' पदार्थ है।' अब कुछ एक उन निगम-आगम वचनों को भी लक्ष्य बनाने का अनुग्रह कर लीजिए, जिन के द्वारा 'भावुकता' की हृदयगत मनोभावों में व्यापकता प्रमाणित हो रही है।

ख-'भावुकता' शब्दानुगत आप्तवचनसंग्रह-

वृषभो न तिग्मशृङ्गिन्तर्युथेषु रोरुवत्।

मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति-'भावयुः'।

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

;कसंहिता 10/86115

(इन्द्र, जैसे तीक्ष्णशृङ्ग वृषभ गोवृन्द में गर्जन करता हुआ रमता है, वैसे ही तुम भी मेरे साथ रमण करो। तुम्हारे हृदय के लिए दधिमन्थन, शब्द करता हुआ, कल्याणकर हो। भावाभिलाषिणी इन्द्राणी जिस सोम का अभिषव करती हैं, वह भी कल्याणकर हो। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं।)

हृदेवज्येष्ठ-श्रेष्ठ इन्द्र को सम्बोधन करती हुई देवेन्द्रपत्नी इन्द्राणी कहती है कि- हहे इन्द्र! सुतीक्ष्ण शृङ्गो वृषभोऽसिं गीर्वाणोऽसिं युद्धं महाबलिष्ठं वृषभं जिस प्रकार गायों के मण्डल में प्रचण्ड शब्द करता हुआ गोमण्डल से रमण करता रहता है तथैव आप मेरे साथ रमण करते रहते हैं। हे इन्द्र! दधिमन्थन वेला में होने वाला शब्द आपके हर्ष का कारण इसलिए बने कि दधारूप मन्थ 'साका'य' रूप से आप को हृदय से प्रिय है। अपिच आपकी सहज भावुकता-भावना-को समुद्दीप्त करने वाले जिस सोमरस का यह इन्द्राणी द्विआप की पत्नीऋ अभिषव करती है द्विसोमवल्ली से आपके लिए सोमरसनिष्पन्न करती हैऋ, वह अभिषुत सोम भी आप की प्रसन्नता का कारण बने। द्विअपनी हृदयानुगता भावुकता से मेरे प्रति अनुरुद्र रहने वाले मेरेऋ ये इन्द्र देवता सम्पूर्ण विश्व में अपना उत्तर-ऊर्ध्व-स्थान रखते हैं।ह

मन्त्र में भौम मनुष्य उस इन्द्र-इन्द्राणी का संवाद प्रतिपादित हुआ है, जो इन्द्र भारतीय भुवनकोश-व्यवस्था के अनुसार देवयुग में भौमस्वर्ग के अधिष्ठाता थे। हृदय-सोम-दधि-भावुकता इत्यादि भाव इस मनुष्य भौम इन्द्र को भी उसी प्रकार प्रिय थे, जैसे प्राणात्मक आधिदैविक इन्द्र का इन्हीं भावों से प्रधान सम्बन्ध रहता है। भौमदेवता पक्ष में 'उत्तर' शब्द 'अग्रणी' का वाचक है। इन्द्र सम्पूर्ण इतर अग्न्यादि भौमदेवताओं में अग्रणी थे। इसी अभिप्राय से इनके लिए 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः' कहा गया है। प्राकृतिक प्राणेन्द्र देव पक्ष में 'उत्तर' शब्द ऊर्ध्वात्मक 'केन्द्र' भाव का संग्राहक है। पाङ्गुचभौतिक महाविश्व का केन्द्रस्थान इन्द्रप्राणात्मक सूर्य ही माना गया है। केन्द्र भाव ही 'उत्तरः है' यही सौर इन्द्र प्राण प्रतिष्ठित है। इसी अभिप्राय से 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः' द्विइन्द्र सम्पूर्ण विश्व से उत्तर है, केन्द्र भावानुगत हैऋ यह कहा गया है। 'हृदय' भाव इस इन्द्र की प्रतिष्ठा है, जैसा कि- 'हृदयमेवेन्द्रः' द्विशत. 12/9/1/15ऋ इत्यादि निगम से स्पष्ट है। पारमेष्ठ्यसोम, तद्रूप पार्थिव दधारसलक्षण साका'यतत्त्व इसी इन्द्रप्राण के उत्तेजक माने गए हैं। हृदयस्थ विज्ञानघन इन्द्र का सोमात्मक भाव ही 'भावुकता' है। सोम मनस्तत्त्व की मूल प्रतिष्ठा है। मानसवृत्ति ही का नाम तो 'भावुकता' है। इस प्रकार उद्गम के द्वारा इन्द्रप्राणानुगत सौम्य मानस भावुकधर्म का, हृदयभाव का सोमतत्त्व का तथा 'इन्द्रशक्ति' नाम से प्रसिद्ध इन्द्राणी द्विइन्द्रशक्तिऋ का ही स्वरूप विश्लेषण हुआ है। मन्त्र में प्रयुक्त 'भावयुः' शब्द हृदयस्था मनोनिबन्धाना 'भावुकता' के अभिप्राय से ही प्रयुक्त हुआ है। भाव-भावना-भावुकता-भावयुः- इत्यादि शब्द मानस सौम्यवृत्ति के ही द्योतक माने गए हैं। अतएव मन्त्र्याख्याता सर्वश्री सायणाचार्य ने 'भावयुः' शब्दार्थ का समन्वय करते हुए कहा है-

‘किं च ते तव यं सोमं भावयुः- भावमिच्छन्ती इन्ऽाणी सुनोति, सो\*पि शंकरोभवत्वित्यर्थः।’ तात्पर्य- मन्त्र में पठित ‘भावयुः’ शब्द हृदयानुगत सौम्यभाव में भावुकता का ही समर्थक बन रहा है।’

2. हपुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति-यतेतः। तदेतत् सर्वेभ्यो\*भ्यस्तेजः सम्भूतं-आत्मन्येवात्मानं बिभर्त्ति। तद्यदा स्त्रियां सिष्ठाति, अथैततज्जनयति। तदस्य प्रथमं जन्म। तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति स्वमग्निं। तस्मादेनां न हिनस्ति। सा\*स्यैतमात्मानमऽ गतं ‘भावयति’। सा भावयित्री भावयितव्या ऋषुपुरुषेणऋ इतिह॥ -ऐतरेय आरण्यक 2/5/1

प्रजा के उत्पत्तिरूप विज्ञान के प्रतिपादिक उद्ग आरण्यक श्रुति का यही तात्पर्य है कि-हशुक्र-शोणित के दाम्पत्यभाव से भौतिक शरीर धारण करने वाली प्रजा सर्वप्रथम अक्रसमय पुरुष के सर्वांशरीर में व्याप्त पुरुष में ही गर्भधारण करती है। प्रथमगर्भावस्था इस औपपातिक भूतात्मा की रेतोधा पुरुष का शुक्र है। सम्पूर्ण अग्नि से समुद्भूत तेजोरसमय ऋषारीक अग्निमयऋ शुक्र ही पुरुष के भूतात्मा ऋआत्मन्येवऋ में ही अन्य आगन्तुक औपपातिक भूतात्मा ऋआत्मानमऋ को गर्भ स्वरूप में परिणत करता है। दूसरे शब्दों में पुरुषसर्वांशरीर में व्याप्त अग्निमय ऋतेजोमयऋ सौम्य शुक्र में ही औपपातिक भूतात्मा पुरुष के भूतात्मा के आधार पर गर्भधारण करता है। इस प्रकार पुरुष के शुक्र में गर्भरूप से प्रतिष्ठित इस शुक्रात्मा की पुरुष के द्वारा जब स्त्री के शोणिताग्नि में आहुति होती है, तो इस शुक्रशोणित के रयिप्राणात्मक याग ऋअन्तर्यामऋ सम्बन्धा से स्त्री के गर्भाशय में औपपातिक आत्मा व्यक्त हो पड़ता है। यही प्रथम व्यद्रावस्था प्रजा का प्रथमजन्म है। इस अवस्था में यह गर्भीभूता प्रजा स्त्री के साथ अन्तर्याम सम्बन्धा से नालद्वारा अभिक्त बनी रहती है। अतएव इस अवस्था में वह आगन्तुक भी प्रजा इस स्त्री को किसी प्रकार इसलिए उत्पीड़ित नहीं करती कि इस गर्भदशा में यह प्रजा स्त्री का अपना ही अग्नि बनी रहती है। वह स्त्री इस गर्भावस्थापक प्रजा की स्वात्मरूप से भावना करती रहती है। यही स्त्री इस गर्भप्रजा की भावयित्री है, पुरुषद्वारा भावयितव्या है। तात्पर्य, पुरुष की प्रजाकामनारूपा ऋपुत्रे मे स्यात्-लक्षणापुत्रैषणारूपाऋ भावना का आधार बनती हुई स्वयं भी इसी भावुकतारूपा भावना की अनुगामिनी बनी रहती है। दूसरा समन्वय यह भी है कि गर्भधारण करने वाली स्त्री गर्भीभूता प्रजा का जो अपनी मानस भावुकता से पालन-पोषण करती है, वह एक प्रकार से पुरुष ऋपतिऋ का ही भरण पोषण है क्योंकि पुरुष ही तो ऋपुरुष का अंशभूत शुक्र ही तोऋ गर्भ रूप में परिणत हुआ है। अतएव यह आवश्यक है कि इस गर्भदशा में पुरुष ऋपतिऋ भी इस स्त्री ऋपत्नीऋ का सतर्कतापूर्वक भावनापूर्वक-सहृदयता से ऋजो सहृदयभाव भावुकता नाम से प्रसि) हैऋ भरण-पोषण करता रहे गर्भदृष्ट्या स्त्री भावयित्री ऋपुरुष

का पालन पोषण करने वाली ऋतु है। अतएव यह पुरुषद्वारा भावयितव्या ऋतुभरणपोषणार्हा ऋतु है। यही भाव 'दोहद' नाम से प्रसिद्ध हुआ है। गर्भिणी की प्रत्येक इच्छा यथा सुविधा पति को पूर्ण करते ही रहना चाहिए, यही निष्कर्ष है।

आरण्यक श्रुति ने 'भावयित्रे' 'भावयितव्या' शब्दों के द्वारा **पुत्रैः प्रजा लक्षणा प्रजाकामनात्मिका मानवदम्पती** की सहज भावुकता का ही स्वरूपविश्लेषण किया है। भावुकता ही 'भावना' का मूलाधार बना करती है। प्रजोत्पत्ति में पुरुष और स्त्री गर्भीभूता प्रजा के प्रति सर्वात्मना भावुक ऋतुदयानुगत स्नेह-वात्सल्यपरिपूर्णा भावना से समन्वित ऋतु ही बने रहते हैं, यही श्रुतिस्वारस्य है भावुकतालक्षणा इसी वात्सल्यपरिपूर्णा भावना से प्रजा का प्रभव-संरक्षण होता है।

3. यद्वेवावग्रापयति ऋतदुच्यतेऋतु। अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्। सो\*पः प्राविशत् ते देवाः प्रजापतिमब्रुवन्- 'त्वमिममक्षिच्छ, स तुभ्यं स्वाय पित्र\*आविर्भविष्यति' इति। तमश्वः शुक्लो भूत्वान्वैच्छत् तमद्भ्य उपोदासृप्तं पुष्करपर्णे विवेद। तमभ्यवेशाङ्गचक्रे। स हैनमुदुवोष। तस्मादश्वः शुक्लः- उदुष्टमुख इव। अथो ह दुरक्षो 'भावुकः'। तमु वा\*त्वैव, हिंसित्वेव मेने। तमुहोवाच वरं ते ददामीति। शतपथब्रा. 7/3/2/14

अग्निचयन कर्मान्तर्गत पठित उद्गृह्युति का रहस्यार्थ तो तत् प्रकरण के विज्ञानभाष्य ऋतुशतपथविज्ञान भाष्यऋतु में ही देखना चाहिए। यहाँ तो केवल अक्षर के अर्थ से कण्डिका में पठित भावुकः' शब्द का ही समन्वय कर दिया जाता है। इष्टकाओं ऋतुदोहद से सम्पक-निष्पक चित्तिरूपा वेदि के प्रत्युमुख जाते हुए अश्व को इस प्रकार प्रेरित किया जाता है। जिस से कि प्रत्यु जाता हुआ अश्व उस चित्तिवेदि का अवग्रापण कर ले ऋतुमुखस्पर्श द्वारा सुँघलेऋतु स्मरण रहे इन वैधायज्ञों में जितने भी कार्य हैं वे सब प्राकृतिक प्राणात्मक नित्य यज्ञकर्मों की प्रतिकृतियाँ हैं। जैसा नित्यप्राण यज्ञों में होता रहता है, ठीक वैसा ही इन मनुष्यकृत भूतयज्ञों में करना पड़ता है। जैसा कि- 'देवाननुविधा वै मनुष्याः। यद्वै देवा अकुर्वन्स्तत करवाणि' इत्यादि निगम से स्पष्ट है। प्राकृतिक अग्नि-इन्द्र- वायु-अश्व-अपि-अज-आदि नित्यप्राणों से निष्पक भौतिक पार्थिव पदार्थों की प्रतिकृतिविधा से ही भौतिक यज्ञ सम्पक होते हैं, यही तात्पर्य है। वेदिचित्ति का अवग्रापण अश्वद्वारा क्यों कराया जाता है ? इस प्रश्न का एक मौलिक वैज्ञानिक समाधान पूर्व में किया जा चुका है। अब प्रकृत श्रुति से उसी अवग्रापणकर्म का एक दूसरा वैज्ञानिक कारण बतलाया जा रहा है।

हजिस लिए कि यह अवग्रापण कराते हैं, उस का अन्य कारण बतलाते हैं। अग्निदेव अपने देवमण्डल से एक बार उत्क्रान्त ऋतुपलायिऋतु हो गया। अपने देवमण्डल से उत्क्रान्त अग्नि

पानी में प्रविष्ट हो गए। इस स्थिति को लक्ष्य बना कर देवताओं ने प्रजापति से कहा कि हे प्रजापते! अपने मण्डल से अग्नि उत्क्रान्त होकर कहीं छिप गए हैं। अतः आप ही कृपया उनका अन्वेषण कीजिए क्योंकि आप अग्नि के पिता हैं। अतः अपने पितृ स्थानीय आप प्रजापति के लिए दूकहीं परोक्ष बने हुएऋ अग्नि अवश्य प्रकट हो जायेंगे। प्रजापति ने देवताओं की इस प्रेरणा से तत्काल अपने आप को शुक्ल अश्व दूस्फेद घोड़ेऋ के रूप में परिणत कर लिया एवं इसी अश्वरूप से प्रजापति ने अग्नि का अन्वेषण करना आरम्भ किया। दूँढते दूँढते प्रजापतिरूप अश्व ने अग्नि को पानी के गर्भ में कमलिनी के पत्र पर दूँढ ही निकाला। अग्नि को प्राप्त कर प्रजापति ने अग्नि पर इस प्रकार की सार्थक दृष्टि का निक्षेप किया कि-मानों प्रजापति अग्नि से यही प्रश्न कर रहे हों कि तुम यहाँ पानी के गर्भ में क्यों परोक्ष बन गए? जिस समय प्रजापति रूप अश्व इस प्रकार परोक्ष बने हुए अग्नि पर मार्मिक दृष्टिनिक्षेप कर रहे थे, उसी समय अपने व्यद्रीभाव से उत्पन्न हो पड़ने वाले आकस्मिक क्षोभ से अग्नि ने अश्वप्रजापति को अपने प्रचण्ड ताप से मानों झुलसा ही दिया। अग्नि के इस दाहकर्म से प्रजापतिरूप अश्व सहसा शुक्लरूप में परिणत होगए एवं उदुष्टमुख बन गए। जिस प्रकार अग्नि से झुलस कर तत्काल प्राणी आवेशपूर्वक अपना मुख झटिति ऊपर की ओर हटाता हुआ तापजनितक्लेश से क्षुब्धासा हो पड़ता है, ठीक यही दशा इस अग्निताप जनित दाह से अश्वप्रजापति के मुख की हो गई। इसी अग्निताप से प्रजापतिरूप अश्व के नेत्र विकृत हो गए, इन से पानी बह निकला और एक प्रकार का विकार उत्पन्न हो गया। इसी अग्निताप से अश्वप्रजापति दूअपनी सहजनिष्ठा से स्वलित होते हुएऋ भावुक दूशिथिल-चटाल-क्षुब्धावत्ऋ बन गए। अश्वप्रजापति की इस उन्मनावृत्ति को, उदुष्टमुखता दुरक्षता तथा भावुकता को देखकर अग्नि को ऐसा भान हुआ कि मानो इसने दूअग्नि नेऋ अपने पिताप्रजापति की हिंसा ही कर डाली है, आर्त्तावस्था में ही परिणत कर दिया है। इस अपराधा क्षमापन के लिए अग्नि विनम्र भाव से बोले कि हे प्रजापति! आप मुझ से इस अपराधा की प्रतिक्रिया में वर मांगिए दूकोई सेवा बतलाइएऋ।ह स्वयं ही इस ब्राह्मणश्रुति में पठित 'भावुक' शब्द अस्थिरता-चाटाल्य-परिताप-क्षोभ-आदि मानसिक विकारों का ही समर्थन कर रहा है।